National Journal of
Hindi & Sanskrit Research

ISSN: 2454-9177
NJHSR 2025; 1(62): 65-67
© 2025 NJHSR
www.sanskritarticle.com

डॉ राधा देवी
सहायक प्राध्यापक (अतिथि संकाय),
संस्कृतविभाग,
जय नारायण व्यास विश्वविद्यालय.
जोधपुर, राजस्थान

Correspondence:
डॉ राधा देवी
सहायक प्राध्यापक (अतिथि संकाय),
संस्कृतविभाग,
जय नारायण व्यास विश्वविद्यालय.
जोधपुर, राजस्थान

गीता में निष्काम कर्मयोग का विवेचन

डॉ राधा देवी

प्रस्तावना –

भगवत गीता में कर्मयोग अपने आप में विलक्षण योग हैं अतः कर्म ईश्वर के द्वारा और साधक के द्वारा तथा अपनी कर इन्दियों से भिन्न भिन्न हैं इसलिए जीव अपनी इन्द्रियों और अपने मन तथा बुद्धि की प्रेरणा से जो करता है वह कर्म कहलाता है अतः वह कर्म सांसारिक जीवों के लिए है जो ईश्वर से कामना करते है ।

कूटशब्दः – योग, कर्मयोग, निष्काम, सकाम, कर्म, सन्यास, कर्मयोगी, जितेन्द्रिय, विशुद्ध अन्तःकरण।

योग शब्द का सामान्य अर्थ है- संयोग, मिलाप तथा विभिन्न घटकों का एकत्रीकरण। महर्षि पतञ्जलि ने योग की परिभाषा देते हुए कहा है-

'योगश्चित्तवृत्ति निरोधः'

अर्थात् चंचल चित्त के समस्त व्यापारों को रोक देना ही योग है। यहाँ लक्ष्यार्थ यही है कि इधर-उधर भटकते हुए चित्त को परमात्मा तत्व में मिला देने से व्यक्ति व्यर्थ के प्रपञ्चों से मुक्त हो रसमय दशा का भागी बन सकता है। **"रसो वै सः"** इसी श्रुति के अनुसार परमात्मा रसरूप है और आत्मा रस व्यासा है। सामान्य रूप में मनुष्यमात्र पर दृष्टि डाली जाए तो ज्ञात होता है कि आनन्द की कामना मनुष्य में स्वाभाविक है । यह उसकी वृत्ति है। उठते-बैठते, चलते-फिरते मनुष्य सदैव आनन्द की कामना से परिपूर्ण रहता है। सम्भव है कि मनुष्य अपनी इस आनन्द प्राप्ति की कामना को स्पष्ट न समझता हो या यह वृत्ति उसमें मूर्च्छित या सुषुप्त हो, पर ज्ञान में या अज्ञान में आनन्द-प्राप्ति ही उसका परम लक्ष्य रहता है। आनन्द मानव की मूल- प्रकृति है। इसलिए जब भी मानव किसी प्रकार के संकट से ग्रस्त हो जाता है, तब वह तत्काल उससे छूटने का प्रयास करता है।

उपनिषदों में इसी आनन्द की अजस्त्र खल्विमानि भूतानि जायन्ते, आनन्देन जातानि जीवन्ति। आनन्दे प्रत्यन्त्याभि संविशन्तीति।

अर्थात् आनन्द ही ब्रहा है। आनन्द से ही समस्त प्राणी उत्पन्न होते हैं, और आनन्द के द्वारा ही प्राणी जीवित रहते है तथा प्रणयकाल आनन्द में समा जाते है इस प्रकार 'योग' के द्वारा आत्मा को उसके काम्य से मिलाने का प्रयास हुआ है। श्रीमद्भगवत् गीता में योग की परिभाषा को बताया है –

"योगः कर्मसु कौशलम्"

अर्थात् – कर्मफल में समस्त रुपी निपुणता प्राप्त कर लेना ही श्रेय का उपाय है कहने का भाव यह है कि किसी कार्य में तन्मय हो जाना ही योग है।

श्रीमद्भगवद्गीता में भगवान श्रीकृष्ण ने सन्यास और निष्काम कर्मयोग - दोनों को परम कल्याणकारी स्वीकार करते हुए भी संन्यास निष्काम कर्मयोग को श्रेष्ठ प्रतिपादित किया है।

अतः दोनों के सम्बन्ध में अर्जुन की जिज्ञासा का समाधान करते हुए गीता में भगवान श्रीकृष्ण कहते है -

संन्यास: कर्मयोगश्च नि:श्रेयसकरावुभौ
तयोस्तु कर्मसंन्यासात्कर्मयोगो विशिष्यते

कर्मों का सन्यास (देह, इन्द्रिय और मनद्वारा होने से सभी कर्मों में कर्तृत्वविषयक अभिमान त्याग ही कर्मयोग समत्वबुद्धि से भगवतप्राप्ति के लिए कर्मो को इन दोनों में साधन- सुलभ होने के कारण निष्काम कर्मयोग विशेष महत्वपूर्ण है यद्यपि ये दोनों ही परम कल्याणकारी माने गये हैं, निष्काम कर्म के सम्पादन में समत्वबुद्धि का योग विशेष है अतः निष्काम कर्म अपने आप ही योग रूप में परिणत हो जाता है, क्योकि योग को एक अन्य परिभाषा में कहा गया है कि "समत्वं योग उच्यते" अर्थात् समता को ही योग कहते है । यह समत्व कब प्राप्त होता है इसका उत्तर श्रीमद्भागवत में इस प्रकार बताया है –

अहंममाभिमानोत्थैः कामलोभादिभिर्मलैः॥
वीतं यदा मनः शुद्धमदुःखमसुखं समम्॥

अर्थात् जब यह मन और मेरे मन के कारण होने वाले काम-लोभादि विकारों से मुक्त एवं शुद्ध हो जाता है, उस समय वह सुखदुःखादि से मुक्त होकर सम अवस्था में आ जाता है। इस अवस्था में पहुँचते ही जीव अपने ज्ञान, वैराग्य और भक्ति से मुक्त हृदय से आत्मा को प्रकृति से परे, एकमात्र (अद्वितीय) भेदरहित, स्वयंप्रकाश सूक्ष्म, अखण्ड और उदासीन देखता है और प्रकृति को शक्तिहीन अनुभव करता है ।

तदा पुरुषमात्मानं केवलं प्रकृतेः परम्।
निरंतरं स्वयंज्योतिरणिमानमखंडितम्॥
ज्ञानवैराग्ययुक्तेन भक्तियुक्तेन चात्मना।
परिपश्यत्युदासीनं प्रकृतिं च हतौजसम्॥
ज्ञेयः स नित्यसंन्यासी यो न द्वेष्टि न काङ्क्षति।
निर्द्वन्द्वो हि महाबाहो सुखं बन्धात्प्रमुच्यते।।

अतः जो व्यक्ति न ही किसी से द्वेष करता है, और न ही किसी से आकांक्षा करता है वह निष्काम कर्मयोगी सदैव सन्यासी ही समझने योग्य है, क्योकि राग-द्वेषादि से रहित हो जाने वाला व्यक्ति सहज ही संसाररूप बन्धन से मुक्त हो जाता है सन्यास और कर्मयोग दोनों का फल भी एक ही प्रतिपादित हुआ है और वह है- परमात्मा की प्राप्ति इसमें किसी का भी आश्रय लेकर व्यक्ति परमात्मा को प्राप्त करने में समर्थ हो जाता है। अतः इन्हे भिन्न फलवाला कहना बिल्कुल ठीक नही है। इसलिए गीता में स्पष्ट कहा गया है –

सांख्ययोगौ पृथग्बालाः प्रवदन्ति न पण्डिताः।
एकमप्यास्थितः सम्यगुभयोर्विन्दते फलम्।।

निष्काम कर्मयोग के बिना सन्यास की स्थिति को प्राप्त करना कठिन होता है, क्योकि निष्काम कर्मयोग के बिना सन्यास अर्थात् मन, इन्द्रिय और शरीरद्वारा होने वाले कर्मों में कर्तृत्व भाव का समावेश न हो पाना सर्वदा कठिन ही नहीं, अतः असम्भव सा प्रतीत होता है। परन्तु भगवतस्वरूप को मनन करने वाला निष्काम कर्मयोगी निज निष्काम कर्मों के अनुष्ठान शीघ्र ही परमात्मा को प्राप्त कर लेता है –

गीता में कहा गया है -

संन्यासस्तु महाबाहो दुःखमाप्तुमयोगतः।
योगयुक्तो मुनिर्ब्रह्म नचिरेणाधिगच्छति।।

इसके अतिरिक्त जितेन्द्रिय, शरीर जित और विशुद्ध अन्तःकरण वाला प्राणी आत्मरूप से परमात्मा में एकाकीभाव को प्राप्त किया हुआ और निष्काम कर्मयोगी कर्म करता हुआ भी उसमें लिप्त नहीं होता है –

योगयुक्तो विशुद्धात्मा विजितात्मा जितेन्द्रियः।
सर्वभूतात्मभूतात्मा कुर्वन्नपि न लिप्यते।।

अतः निष्काम कर्मयोगी पुरुष जिस परम लाभ को संसार में रहते हुए पा लेता है लेकिन वह सांसारिक मनुष्य क्यों नहीं प्राप्त कर पाते है, जब कि वे भी जीवनसंघर्ष में वही भूमिका निभाते है जो निष्कामकर्मयोगी निभाते है। इस संसार में मनुष्य की तपस्या यद्यपि बहुत कठोर होती है लेकिन होती है क्षुद्र फलो के लिए अतः परिणाम निष्कामकर्मयोगी की अपेक्षा हीन कोटि का अथवा क्षुद्र प्राप्त होता है कर्म के एकबार होने पर भी भावना भेद से फल में अन्तर पड़ जाता है। इस प्रकार गंगाजी में मात्र उसे सामान्य नदी मानकर स्नान करना जहाँ शारीरिक शुद्धिरुपी फल देता है परन्तु पवित्र मातृभाव रखकर स्नान करना शरीर के साथ मन की शुद्धिरुपी फल भी दे देता है। इसलिए सकाम कर्म- कर्ता और निष्काम कर्मयोगी के कर्मों का अन्तर तत्काल प्रकट हो जाता है सकामकर्म कर्ता के कर्म का उद्देश्य - स्वार्थ से सना होता है निष्कामकर्मयोगी का कार्य स्वार्थ-विरहित तो होता ही है, लेकिन ईश्वरीय प्रेम से सराबोर तथा समत्व की भावना के द्वारा आदर्श का प्रतिष्ठापक भी होता है। यही कारण है कि उसका कर्म उसे विवेक के साथ समरस भी बना देता है ।

अतः निष्काम कर्म योग की सामर्थ्य अद्भुत होती है। इस प्रकार के कर्म से व्यक्ति और समाज दोनों का परम कल्याण होता है। कर्मयोगी के कर्म का उद्देश्य ही कि विश्व-मंगल का विधान होता है, अत: उस कर्म से उसके साथ-साथ विश्व का भी कल्याण होता है।

निष्कर्ष –

सभी शास्त्रों का मुख्य उद्देश्य ब्रह्म प्राप्ति ही है अतः जब समस्त संदेशों का निराकरण हो जाता है और सांसारिक सुखों से भक्ति अनासक्त हो जाता है और वह मिथ्या संसार को जानकर संसार से विरक्त हो जाता है अतः कर्मयोगी सांसारिक सत्ता से उठकर पारमार्थिक सत्ता में विलिन हो जाता है यह विविध दर्शनों के अनुसार कर्म सिद्धान्त अथवा कर्म योग बताया गया है।

पाद-टिप्पणि

१. पंतजलि योग दर्शन समाधिपाद प्रथम- 2

२. श्रीमद्भगवत गीता - 2/50

३. श्रीमद्भगवतगीता - 5/2

४. श्रीमद्भागवत 3/16

५. श्रीमद्भागवत 3/17,18

६. श्रीमद्भागवत गीता – 5/4

७. श्रीमद्भगवत गीता - 5/6

८. श्रीमद्भगवत गीता- 5/7

सन्दर्भ-सूची

१. श्रीमद्भगवद्गीता, सचित्र साधक-संजीवनी, हिंदी टीका, स्वामी रामसुखदास, गीताप्रेस गोरखपुर

२. पातञ्जलयोगदर्शनम् (भाष्य - हिन्दीव्याख्यासहितम्) पतञ्जलिः, संपादक – रामशन्करभट्टाचार्यः, टीकाकार- स्वामी-हरिहरानन्द-आरण्यः, मुद्रालय - ज्योतिषप्रकाश-मुद्रणालयः, 1971